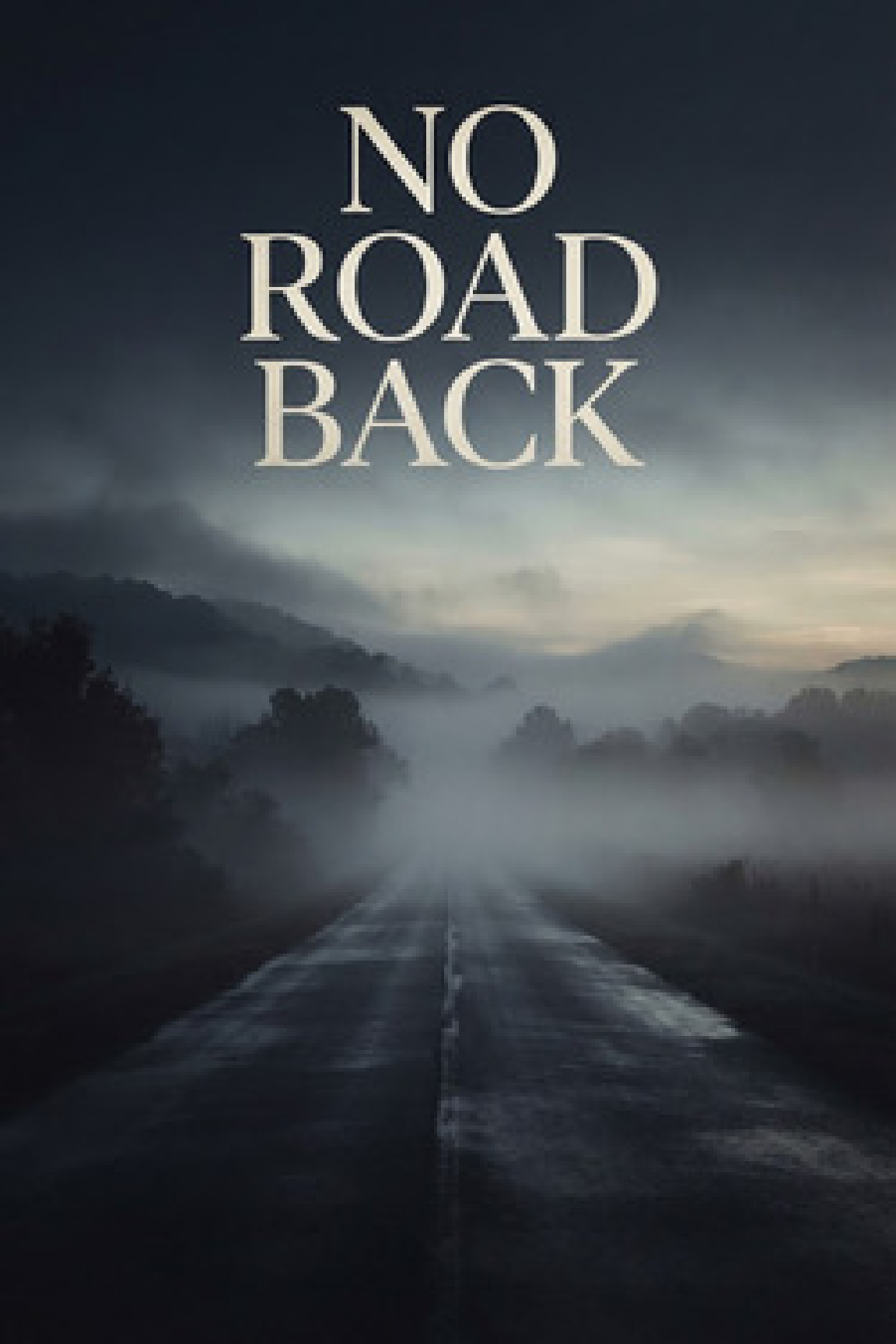

NO
ROAD
BACK

भाग दो

दहलीज़ 4

वापसी का कोई रास्ता नहीं

कुछ यात्राएँ प्रस्थान से शुरू होती हैं।

और कुछ हानि से।

यह यात्रा दूसरी तरह की है।

लंबे समय तक मैं मानता रहा कि वापसी एक भौगोलिक मामला है।

किसी जगह को छोड़ना।

कोई दूरी पार करना।

प्रस्थान के बिंदु पर लौट आना।

यह एक सरल परिभाषा थी।

सुविधाजनक।

और ग़लत भी।

जैसे-जैसे साल बीते, मैंने पाया कि कुछ वापसियाँ किसी दिखने वाली जगह तक नहीं ले जातीं।

क्योंकि जिस जगह पहुँचना है, वह अब मौजूद नहीं है।

या वह कभी थी ही नहीं।

या हम इतना बदल चुके हैं कि उसे पहचान नहीं पाते।

और फिर भी लौटने की ज़रूरत बनी रहती है।

यह इंसान की सबसे गहरी लालसाओं में से एक है।

हम उस समय में लौटना चाहते हैं जब चीज़ें ज़्यादा सरल लगती थीं।

ज़्यादा साफ़।

ज़्यादा व्यवस्थित।

हम उन लोगों के पास लौटना चाहते हैं जिन्हें हमने खो दिया।

चूक गए अवसरों के पास।

न लिए गए फ़ैसलों के पास।

उन क्षणों के पास जब जीवन अब भी हर संभावना के लिए खुला लगता था।

पर समय कुछ भी वापस नहीं देता।

यह उसका काम नहीं है।

समय बदल देता है।

वह कभी वापस नहीं देता।

ऐसे साल थे जिनमें मैंने असंभव वापसियों का पीछा किया।

मैंने यह बिना एहसास किए किया।

मैंने अपने पुराने रूपों को फिर से पाने की कोशिश की।

युवक।

पेशेवर।

बेटा।

वह आदमी जिसे यक़ीन था कि वह जानता है कि कहाँ जा रहा है।

हर कोशिश का अंत एक ही तरह हुआ।

एक निराशा के साथ।

क्योंकि वह व्यक्ति अब मौजूद नहीं था।

और ऐसा ही होना ठीक था।

एक सुबह मुझे कुछ ऐसा समझ आया जिसने अतीत को देखने का मेरा तरीक़ा बदल दिया।

मैं सचमुच वापस नहीं जाना चाहता था।

मैं एक एहसास वापस पाना चाहता था।

एक निश्चितता।

एक परिचितता।

दुनिया का एक ऐसा रूप जिसमें सवाल जवाबों से कम लगते थे।

पर जीवन समय के आर-पार यात्राएँ नहीं देता।

वह सिर्फ़ रूपांतरण देता है।

तभी मैंने वापसी को अलग नज़र से देखना शुरू किया।

उसकी ओर गति के रूप में नहीं जो मैं था।

बल्कि उसके क़रीब पहुँचने के रूप में जो मैं बन चुका था।

अंतर बहुत बड़ा है।

जब हम पीछे लौटने की कोशिश करते हैं, हम समय से लड़ते हैं।

जब हम आगे बढ़ना स्वीकार करते हैं, हम आख़िरकार उसे समझना शुरू करते हैं।

बहुत से लोग अपना पूरा जीवन एक घर खोजने में बिता देते हैं।

वे सोचते हैं कि वह एक जगह है।

एक शहर।

एक गली।

एक देश।

फिर वह दिन आता है जब वे पाते हैं कि घर आत्मा की एक अवस्था है।

और कोई भी भौगोलिक निर्देशांक उसकी गारंटी नहीं दे सकता।

अपने जीवन में मैंने बहुत से देश पार किए हैं।

बहुत-सी संस्कृतियाँ।

बहुत-सी भाषाएँ।

हर बार मैंने कुछ पीछे छोड़ा।

हर बार मैंने कुछ और समेटा।

बिना एहसास किए मैं अनुभवों का एक जीवित संग्रह बनता जा रहा था।

अलग-अलग जगहों से बनी एक पच्चीकारी।

एक समय आया जब मैंने ख़ुद से यह पूछना छोड़ दिया:

“मैं कहाँ का हूँ?”

और ख़ुद से यह पूछना शुरू किया:

“मैं अपने साथ क्या लेकर चलता हूँ?”

दूसरा सवाल कहीं ज़्यादा उपयोगी था।

क्योंकि अपनापन बदलता है।

सीमाएँ बदलती हैं।

नक़्शे बदलते हैं।

इसके विपरीत, जो हम भीतर लिए चलते हैं, वह यात्रा करता रहता है।

मुझे कुछ रातें याद हैं जिनमें भटकाव का एहसास सामान्य से ज़्यादा तीव्र था।

रातें जब सब कुछ दूर लगता था।

लोग।

जगहें।

निश्चितताएँ।

मैं ख़ुद भी।

उन क्षणों में सबसे पुराना प्रलोभन उभर आता था।

लौट जाना।

जो किया उसे अनकिया कर देना।

सब कुछ पहले जैसा कर देना।

किसी पिछले बिंदु से फिर से शुरू करना।

पर हर बार वास्तविकता ने मुझे एक ही सच दिखाया।

कोई पिछला बिंदु नहीं है।

सिर्फ़ वर्तमान बिंदु है।

और यह चुनाव कि उसके साथ क्या करना है।

समय के साथ मैंने अतीत को एक मंज़िल नहीं, एक पुस्तकालय मानना सीखा।

एक जगह जहाँ जाया जाए।

बसा न जाए।

क्योंकि जो अतीत में जीते हैं, वे धीरे-धीरे वर्तमान में बसना छोड़ देते हैं।

और वर्तमान के बिना कोई भविष्य नहीं होता।

वे लोग जिन्हें मैंने प्यार किया।

वे शहर जिन्हें मैंने पार किया।

वे अवसर जो मैंने खोए।

सफलताएँ।

हारें।

सब कुछ मौजूद रहा।

पर एक अलग रूप में।

पहले से लिखे गए पन्नों की तरह।

फिर से पढ़ने के लिए।

फिर से लिखने के लिए नहीं।

यह एक मुक्ति थी।

क्योंकि आख़िरकार मैंने वह खोजना छोड़ दिया जो फिर से पाया नहीं जा सकता था।

और मैंने अपनी ऊर्जा उसमें लगानी शुरू की जो अब भी बनाया जा सकता था।

विरोधाभास यह है कि ठीक उसी क्षण अतीत ने मुझे सताना बंद कर दिया।

जब मैंने उसे एक मंज़िल की तरह बरतना छोड़ दिया।

लोगों के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ।

बहुत से लोग मेरे जीवन से चले गए थे।

कुछ अपनी मर्ज़ी से।

कुछ मजबूरी में।

और कुछ बस समय के काम से।

शुरू में मैंने उन अनुपस्थितियों को हानियों के रूप में समझा।

फिर मुझे समझ आया कि कुछ उपस्थितियाँ अलग तरीक़ों से मौजूद रहती थीं।

पीछे छोड़े गए सबक़ों में।

यादों में।

व्यवहारों में।

उन फ़ैसलों में जो मुझ पर असर डालते रहे।

यह भी एक वापसी थी।

लोगों की नहीं।

उनके अर्थ की।

शायद परिपक्वता ठीक इसी में है।

यह समझने में कि कुछ भी अपने मूल रूप में नहीं लौटता।

पर लगभग सब कुछ एक नए रूप में जीता रह सकता है।

आख़िर में मैंने वापसी का रास्ता खोजना छोड़ दिया।

क्योंकि मुझे कुछ ऐसा समझ आया जो किसी नक़्शे ने कभी नहीं दिखाया था।

मैं कहीं वापस नहीं जा रहा था।

मैं पहुँच रहा था।

अपने उस रूप तक पहुँच रहा था जो सभी प्रस्थानों, सभी हानियों, सभी मुलाक़ातों और सभी रूपांतरणों से बना था।

और तभी विरोधाभास अपने आप सुलझ गया।

जिस वापसी को मैं सालों से खोज रहा था, वह अतीत तक नहीं ले गई।

वह मुझ तक ले गई।

इसीलिए कहीं-नहीं से वापसी की बात करना सटीक है।

इसलिए नहीं कि कोई मंज़िल नहीं थी।

बल्कि इसलिए कि मंज़िल का कोई पता नहीं था।

वह भूगोल के बिना एक जगह थी।

सीमाओं के बिना।

निर्देशांकों के बिना।

एक जगह जिसे मैं पूरी ज़िंदगी पहचाने बिना पार करता रहा।

कहीं-नहीं से वापसी।

उसकी ओर वापसी जो मैं बन चुका था।